2. सांख्यकारिका

- सांख्यदर्शन सबसे प्राचीन दर्शन है।
- सम् उपसर्गपूर्वक √ख्या प्रकथने धातु से अङ् प्रत्यय करने के बाद 'टाप्' प्रत्यय करने से 'संख्या' शब्द बनता है। पुनः संख्या पद से ''तस्येदम्'' सूत्र द्वारा 'अण्' प्रत्यय करने पर ''सांख्य'' पद निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है 'गणना से सम्बन्धित' अथवा 'गणना से जानने योग्य', क्योंकि सांख्यदर्शन में तत्त्वों की गणना अर्थात् संख्या को अत्यधिक महत्त्व दिया गया है।
- सांख्यदर्शन के प्राचीन आचार्य **कपिलमुनि** हैं।
- सांख्यदर्शन में 25 तत्त्वों की चर्चा है।
- सांख्यदर्शन के अनुसार मुख्यरूप से दो तत्त्व नित्य हैं - पुरुष तथा प्रकृति।
- सांख्यदर्शन के प्रमुख आचार्य- कपिल, आसुरि, पञ्चशिख, विन्ध्यवासी, जैगीषव्य, वार्षगण्य, ईश्वरकृष्ण आदि हैं
- सांख्यदर्शन के प्रमुखग्रन्थ- सांख्यसूत्र, षष्टितन्त्र, राजवार्तिक, एपिकसांख्य, अर्वाचीन सांख्यसूत्र आदि हैं।
- सांख्यसूत्र की प्रमुख टीकाएँ- अनिरुद्धवृत्तिसार, सांख्यवृत्तिसार,सांख्यप्रवचनभाष्य, लघुसांख्यवृत्ति, तत्त्वसमास अथवा समाससूत्र हैं।
- **'सांख्यकारिका'** सांख्यदर्शन का प्रकरणग्रन्थ है जिसके लेखक **ईश्वरकृष्ण** हैं।
- ईश्वरकृष्ण के गुरु **'पञ्चशिख'** माने जाते हैं।
- पञ्चशिख के गुरु- **'आसुरि'** माने जाते हैं।
- सांख्यकारिका में **सत्तर कारिकायें** हैं जो **आर्या छन्द** में निबद्ध हैं।
- सांख्यकारिका का अपरनाम- सांख्यसप्तति, हिरण्यसप्तति अथवा सुवर्णसप्तति है।
- सांख्यकारिका की टीकाएँ - गौडपादभाष्य, माठरवृत्ति, जयमङ्गला, युक्तिदीपिका, सांख्यतत्त्वकौमुदी आदि हैं।
- सत्कार्यवाद सांख्यदर्शन का प्रमुख सिद्धान्त है जो छान्दोग्योपनिषद् में भी प्राप्त होता है।
- सांख्यदर्शन के दो प्रमुख सिद्धान्त हैं - सत्कार्यवाद एवं पुरुषबहुत्व।
- सांख्यशास्त्र के अनुसार त्रिविध दुःख हैं - आध्यात्मिक, आधिभौतिक,आधिदैविक

दुःखत्रय

- आध्यात्मिक दुःख- काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, भय, विषाद आदि से होने वाला दुःख।
- आधिभौतिक दुःख- मनुष्य, पशु, सर्प आदि से होने वाला दुःख।

- आधिदैविक दुःख- यक्ष, राक्षस , भूत, प्रेत आदि से होने वाला दुःख।
- शारीरिक- वात, पित्त, कफ आदि से उत्पन्न दुःख।
- मानसिक- काम, क्रोध आदि से उत्पन्न दुःख।
- 'ऐकान्तिक' शब्द का अर्थ है - दुःख का अनिवार्य रूप से नष्ट हो जाना।
- 'आत्यन्तिक' शब्द का अर्थ है - जो दुःख नष्ट हुआ है उसका फिर से उत्पन्न न होना।
- लौकिक उपायों से दुःखत्रय की सार्वकालिक निवृत्ति नहीं होती।
- वात, पित्त, कफ त्रिदोष की विषमता से शारीरिक दुःख उत्पन्न होता है।
- काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या, विषाद आदि द्वारा विषयों की अप्राप्ति से उत्पन्न दुःख मानसिक दुःख हैं।
- मनुष्य, पशु, मृग, पक्षी, सर्प आदि से उत्पन्न होने वाला दुःख आधिभौतिक दुःख है।
- यक्ष, राक्षस, विनायक, ग्रह इत्यादि के दुष्ट प्रभाव से होने वाला दुःख 'आधिदैविक दुःख' है।
- वैदिक उपाय भी लौकिक उपायों के समान दुःखत्रय की ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक निवृत्ति में असमर्थ हैं।
- व्यक्त, अव्यक्त और पुरुष के ज्ञान से दुःख की निवृत्ति अधिक उत्तम होती है।
- सांख्यशास्त्र चार प्रकार से तत्त्वों का विभाजन करता है-
  (i) प्रकृति (ii) प्रकृति-विकृति (iii) केवल विकृति (iv) न प्रकृति न विकृति।
- **प्रकृति** की संख्या है- एक (मूलप्रकृति)। इसे प्रधान या अव्यक्त भी कहा जाता है।
- **प्रकृति एवं विकृति** की संख्या सात है- 'प्रकृतिविकृतयः सप्त' (का0-3)
  जो महत् , अहङ्कार तथा पञ्चतन्मात्राएँ हैं। इन्हें **कारण एवं कार्य** नाम से भी जाना जाता है।
- केवल **विकृति** अर्थात् कार्य की संख्या सोलह है। 'षोडशकस्तु विकारः' (का0-3)
  पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ,पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, मन,पञ्चमहाभूत। इन्हें **कार्य** नाम से भी जाना जाता है।
  * पाँचज्ञानेन्द्रियाँ - श्रोत्र , नेत्र, घ्राण, त्वक्, रसना
  * पाँचकर्मेन्द्रियाँ - वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ।
  * पाँचतन्मात्रा - शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध
  * पाँचमहाभूत - आकाश, वायु, तेज , जल, पृथिवी
- सांख्य में पुरुष को न प्रकृति (कारण) तथा न विकृति (कार्य) कहा गया है-
  न प्रकृतिः न विकृतिः पुरुषः (का0-3)
- सत्त्व,रजस्,तमस् की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है 'सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः'

पुरुष

मूलप्रकृति
|
महत् (बुद्धि)
|
अहङ्कार
|
पञ्चतन्मात्रा +एकादश इन्द्रिय
|
पञ्चमहाभूत

सांख्य के अनुसार प्रमाण

- 'दृष्टमनुमानमाप्तवचनं' (का0-4) इस कथन से सांख्य तीन प्रमाण मानता है - (i) दृष्ट (प्रत्यक्ष), (ii) अनुमान तथा (iii) आप्तवचन।
- सांख्य को तीन ही प्रमाण अभीष्ट हैं (का0-4) 'त्रिविधं प्रमाणमिष्टम्'। इन्हीं तीन प्रमाणों के ज्ञान से ही प्रमेयों का ज्ञान होता है- **'प्रमेयसिद्धिः प्रमाणाद्धि'**

अन्य आचार्यों द्वारा स्वीकृत प्रमाण

- चार्वाक केवल प्रत्यक्ष को प्रमाण के रूप में मानता है।
- बौद्ध-दर्शन - दो प्रमाण मानता है- (प्रत्यक्ष, अनुमान)
- सांख्य-योग - तीन प्रमाण मानता है- (प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द)
- न्याय- वैशेषिक - चार प्रमाण मानता है- (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द)
- प्रभाकर मीमांसक - पाँच प्रमाण मानते हैं- (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द ,अर्थापत्ति)
- भाट्ट मीमांसक- छः प्रमाण मानते है- (प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द,अर्थापत्ति, अभाव)
- पौराणिक- आठ प्रमाण (प्रत्यक्ष, अनुमान,उपमान, शब्द,अर्थापत्ति,अभाव, सम्भव,ऐतिह्य)
- **'प्रतिविषयाध्यवसायो दृष्टम्'** (का0-5) प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण है। विषय से सम्बद्ध इन्द्रिय पर आश्रित बुद्धि-व्यापार या ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।
- **'तल्लिङ्गलिङ्गिपूर्वकम् अनुमानम्'** (का0-05) यह अनुमान प्रमाण का लक्षण है। लिङ्ग और लिङ्गी के ज्ञान से जो उत्पन्न होता है उसे अनुमान प्रमाण कहते हैं।
- सर्वप्रथम अनुमान के दो भेद होते हैं - वीतानुमान, अवीतानुमान
- वीतानुमान के दो भेद- पूर्ववत्, सामान्यतोदृष्ट।
- अवीतानुमान का एक भेद - शेषवत्।
- इस प्रकार पूर्ववत्, शेषवत् ,सामान्यतोदृष्ट के भेद से अनुमान प्रमाण के तीन भेद हैं।
- 'आप्तश्रुतिराप्तवचनम्' (का0-05) अर्थात् आप्त पुरुष की उक्ति ही शब्द प्रमाण है।
- शब्दप्रमाण को **आगमप्रमाण** या **आप्तप्रमाण** भी कहा जाता है।
- जो जिस रूप में है उसको उसी रूप में कहना आप्तवचन तथा उपदेश करने वाले को आप्तपुरुष कहते हैं।
- सामान्यविषयों का ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण से होता है।
- इन्द्रियों से दिखाई न देने वाले अर्थात् परोक्ष पदार्थों का ज्ञान अनुमान प्रमाण से होता है।
- मूलप्रकृति आदि का ज्ञान सामान्यतोदृष्ट नामक अनुमान प्रमाण से होता है।
- सांख्य के अनुसार वस्तुओं का प्रत्यक्ष आठ रूपों से नहीं होता है -

  (i) अत्यधिक दूर होने से (ii) अत्यधिक समीप होने से,
  (iii) इन्द्रियों के नाश (iv) मन की अस्थिरता से,
  (v) सूक्ष्म होने से (vi) बीच में किसी रुकावट के आ जाने से,
  (vii) समान वस्तु में मिल जाने से (viii) अपने कारण से उत्पन्न होने से।

  अतिदूरात् सामीप्यादिन्द्रियघातान्मनोऽनवस्थानात्।
  सौक्ष्म्याद् व्यवधानादभिभवात् समानाभिहाराच्च॥ (का0-07)
- प्रकृति की उपलब्धि नहीं होती है - सूक्ष्म होने के कारण।
- अभाव के कारण नहीं अपितु सूक्ष्मता के कारण प्रकृति की उपलब्धि नहीं होती है 'सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिर्नाभावात्' (का0-08)

- प्रकृति की उपलब्धि उसके कार्य से होती है, महत् आदि कार्य प्रकृति के समान एवं असमान दोनों होते हैं **'महदादि तच्च कार्यं प्रकृतिसरूपं विरूपं च'** (का0-8)
- सत्कार्यवाद सांख्यदर्शन का प्रमुख सिद्धान्त है 'सतः सत् जायते'
- सांख्य की दृष्टि में सत्कार्यवाद है- असदकरणादुपादानग्रहणात् सर्वसम्भवाभावात्। शक्तस्य शक्यकरणात् कारणभावाच्च सत्कार्यम्।। (का-09)
- सत्कार्यवाद सिद्धान्त में पाँच हेतु हैं-
  (i) असदकरणाद् (ii) उपादानग्रहणात् (iii) सर्वसम्भवाभावात्
  (iv) शक्तस्य शक्यकरणात् (v) कारणभावात्
- सत्कार्यवाद सिद्धान्त के अनुसार - कार्य हमेशा अपने कारण रूप में विद्यमान रहता है।
- सांख्यशास्त्र के अनुसार न तो किसी वस्तु की उत्पत्ति होती है और न ही विनाश होता है।
- कार्य की उत्पत्ति का अर्थ है अव्यक्त से व्यक्त होना तथा विनाश का अर्थ है व्यक्त से अव्यक्त होना।
- मूलप्रकृति से उत्पन्न होते हैं- महद् आदि कार्य, महद् आदि कार्यों को 'व्यक्त' कहते हैं।
- प्रकृति है- त्रिगुणात्मिका, प्रधान, प्रसवधर्मिणी, अव्यक्त, जड तथा अचेतन।

अव्यक्त तथा व्यक्त पदार्थों का सादृश्य एवं वैषम्य का निरूपण

व्यक्त	अव्यक्त (प्रकृति)
हेतुमान्	अहेतुमान्
अनित्य	नित्य
अव्यापी	व्यापी
सक्रिय	निष्क्रिय
अनेक	एक
मूलकारण पर आश्रित	अनाश्रित
लिङ्गसहित	लिङ्गरहित
अवयवयुक्त	निरवयव
परतन्त्र	स्वतन्त्र

हेतुमदनित्यमव्यापि सक्रियमनेकमाश्रितं लिङ्गम्।
सावयवं परतन्त्रं व्यक्तं विपरीतमव्यक्तम्। (का0-10)

- महत् तत्त्व से लेकर आकाश आदि स्थूलपर्यन्त सभी पदार्थों को व्यक्त कहा जाता है।
- प्रत्यक्ष प्रमाण के विषय होते हैं- व्यक्त
- हेतुमत्- हेतु अर्थात् कारण जिसका होता है उसे हेतुमत् कहते हैं।
- अव्यक्त अर्थात् प्रकृति नित्य है क्योंकि वह किसी का कार्य नहीं होती है।
- सांख्यमत में अनित्य का अर्थ है- सूक्ष्म रूप से अपने कारण में रहने वाला।
- सांख्य में पुरुषबहुत्व के सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की गई है।
- सारे व्यक्त पदार्थ अपने-अपने कारण पर आश्रित होते हैं।
- व्यक्त तथा अव्यक्त का साम्य एवं पुरुष से उसके वैषम्य का निरूपण-

त्रिगुणमविवेकि विषयः सामान्यमचेतनं प्रसवधर्मि।
व्यक्तं तथा प्रधानं, तद्विपरीतस्तथा च पुमान्।। (का.-11)

व्यक्त तथा अव्यक्त	पुरुष
त्रिगुणात्मक	गुण से रहित (त्रिगुणातीत)
अविवेकी	विवेकी
विषयी	अविषयी
सामान्य	असामान्य
अचेतन	चेतन
प्रसवधर्मी	अप्रसवधर्मी

- 'व्यक्तं तथा प्रधानं, तद्विपरीतस्तथा च पुमान्' (का0-11) इस कारिका में व्यक्त तथा अव्यक्त के साधर्म्य एवं पुरुष का उससे वैधर्म्य का निरूपण किया गया है।

सांख्य के त्रिविध गुण

- सांख्यानुसार तीन गुण हैं- सत्त्व, रजस् तथा तमस्। (का0-13)
- सत्त्व, रजस्, तमस् का स्वरूप है- सुख, दुःख, मोह। **प्रीत्यप्रीति-विषादात्मकाः।** (का0-12) प्रीति का अर्थ - सुख, अप्रीति का अर्थ है- दुःख तथा विषाद का अर्थ है- मोह।
- तीनों गुणों के क्रमशः कार्य हैं- प्रकाश, प्रवर्तन, नियमन। **प्रकाश- प्रवृत्तिनियमार्थाः।** (का0-12) जिसका अर्थ है- प्रकाश करना, प्रवृत्त करना, नियमन करना।
- तीनों गुणों के स्वभाव हैं- एक दूसरे को दबाना, आश्रय बनना, उद्भव या आविर्भाव **''अन्योन्याभिभवाश्रयजननमिथुनवृत्तयश्च''** (का0-12)
- सत्त्व, रजस् तथा तमस् क्रमशः शान्त, घोर और मोह वृत्ति वाले हैं।

गुण	स्वरूप	कार्य/प्रयोजन	स्वभाव
सत्त्वगुण	प्रीति (सुखात्मक)	प्रकाश करना	एक दूसरे को दबाना
रजोगुण	अप्रीति (दुःखात्मक)	प्रवर्तन करना	आश्रय बनना
तमोगुण	विषाद (मोहात्मक)	नियमन करना	उद्भव या आविर्भाव करना

तीनों गुणों की विशेषताएँ-

- **'सत्त्वं लघु प्रकाशकम्'** (का0-13) सत्त्व गुण हल्का होता है अतः प्रकाशक होता है।
- **'उपष्टम्भकं चलं च रजः'** (का0-13) रजोगुण चञ्चल होता है अतः उत्तेजक होता है।
- **'गुरु वरणकमेव तमः'** तमो गुण भारी होता है अतएव अवरोधक होता है।

सत्त्व गुण	हल्का	प्रकाशक
रजो गुण	चञ्चल (प्रवृत्तिशील)	उत्तेजक
तमो गुण	भारी	अवरोधक

- तीनों गुण अर्थात् सत्त्व, रजस् तथा तमस् विरोधी स्वभाव वाले होते हुए भी **'प्रदीपवच्चार्थतो वृतिः'** (का0-13) अर्थात् दीपक के समान व्यवहार करने वाले हैं।
- सत्त्वगुण के प्रभावी होने पर व्यक्ति स्वयं को हल्का, सुखी एवं आनन्दित अनुभव करता है।
- रजोगुण के प्रभावी होने पर व्यक्ति में चंचलता एवं गतिशीलता की अनुभूति होती है।
- तमोगुण के प्रभावी होने पर किसी भी काम को करने की इच्छा न होना, शरीर में आलस्य होना, सोने आदि में प्रवृत्त होना, होता है।
- सत्त्वगुण एवं तमोगुण दोनों गुण निष्क्रिय होते हैं रजोगुण ही उन्हें क्रियाशील बनाता है।
- सत्त्व आदि तीनों गुणों के कारण अविवेकित्व इत्यादि धर्मों की सत्ता सिद्ध होती है।
- कार्य का कारण गुणों के स्वभाव से युक्त होने से मूलप्रकृति (अव्यक्त) की सत्ता सिद्ध होती है।
- अव्यक्त अर्थात् मूलप्रकृति की सत्ता सिद्ध करने वाले पाँच हेतु-

  (i) भेदानां परिमाणात् (ii) समन्वयात् (iii) शक्तितः प्रवृत्तेः

  (iv) कारणकार्यविभागात्, (v) वैश्वरूपस्य अविभागात्। (का0-15)

  अव्यक्त (प्रकृति) की सत्ता की सिद्धि

  1. भेदानां परिमाणात् (कार्यों के सीमित परिमाण से)
  2. समन्वयात् (भिन्नपदार्थों में स्थित अनुरूपता)
  3. शक्तितः प्रवृत्तेः (शक्ति के अनुसार प्रवृत्ति)
  4. कारणकार्यविभागात् (कारण और कार्य का विभाग प्राप्त होने से)
  5. वैश्वरूपस्य (सभी रूपों के एक रूप हो जाने से)
- 'भेदानां' से तात्पर्य महत् से लेकर भूमि पर्यन्त सभी कार्यों से है।
- अव्यक्त अपने तीनों गुणों के स्वरूप तीनों के स्वरूप से तीनों के मिश्रित रूप से, एक-एक गुण के आश्रय से उत्पन्न भेद या वैशिष्ट्य के कारण, परिणाम से जल के समान प्रवृत्त होता रहता है-

  'परिणामतः सलिलवत् प्रतिगुणाश्रयविशेषात्।' (का0-16)
- सृष्टि का मूल कारण अव्यक्त है जिसमें सत्त्व, रजस् तथा तमस् विद्यमान रहते हैं इन्हीं गुणों के सहयोग से मूलप्रकृति निरन्तर क्रियाशील रहती है।
- ज्ञ अर्थात् पुरुष की सत्ता सिद्ध करने वाले पाँच हेतु- संघातपरार्थत्वात्, त्रिगुणादिविपर्ययात्, अधिष्ठानात्, भोक्तृभावात्, कैवल्यार्थं प्रवृत्तेः। (का.-17)

  पुरुष की सत्ता सिद्धि

  संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्

  पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च॥ का. 17।।

1. संघातपरार्थत्वात् (संघातों का दूसरों के लिए होना)
2. त्रिगुणादिविपर्ययात् (त्रिगुणादि से विपरीत स्वभाव वाला होने से)
3. अधिष्ठानात् (त्रिगुण समूह का अधिष्ठाता होने से)
4. भोक्तृभावात् (भोग्य एवं भोक्ताभाव से)
5. कैवल्यार्थं प्रवृत्तेः (मोक्ष के लिए प्रवृत्ति देखे जाने से)

- सांख्य का पुरुष सभी शरीरों का अधिष्ठाता है।
- सांख्य का पुरुष त्रिगुणरहित होने से सबसे भिन्न है।
- पुरुषबहुत्व का सिद्धान्त सांख्य का सिद्धान्त है।
- पुरुषबहुत्व की सत्ता सिद्ध करने वाले तीन हेतु हैं-
  (i) जननमरणकरणानां (ii) अयुगपत्प्रवृत्तेः (iii) त्रैगुण्यविपर्ययात्
- जन्म, मरण तथा इन्द्रियों की व्यवस्था होने से और एक साथ प्रवृत्ति का अभाव होने से तथा तीन गुणों के भेद के कारण पुरुष बहुत्व की सत्ता सिद्ध होती है।
- जननमरणकरणानाम् में करण से अभिप्राय तीन अन्तःकरण (मन, बुद्धि, अहंकार) तथा पाँचज्ञानेन्द्रियों एवं पाँच कर्मेन्द्रियों से है।
- पुरुष के चेतन, निर्गुण, विशेष, अविषय, विवेकी एवं अप्रसवधर्मी होने के कारण साक्षित्व, कैवल्य, माध्यस्थ्य, द्रष्टृत्व एवं अकर्तृत्व (का0-19) आदि धर्मों की सिद्धि भी होती हैं।

पुरुष के धर्म

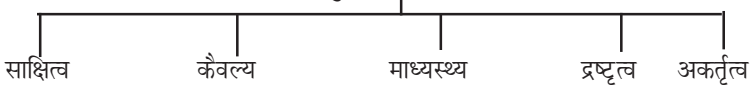

- पुरुष के संयोग से जड़ प्रकृति चेतन के समान प्रतीत होती है।
- पुरुष गुणरहित एवं अपरिणामी होने के कारण वस्तुतः कर्ता नहीं होता बल्कि उसमें कर्तापन की प्रतीति भ्रान्तिमात्र है।
- सांख्य की सृष्टि 'पङ्ग्वन्धवत्' अर्थात् लगड़ा और अन्धा के समान है। (का0-21)
- पुरुष के द्वारा प्रधान (प्रकृति) का दर्शन तथा प्रकृति (प्रधान) के द्वारा कैवल्य की प्राप्ति के लिए पुरुष और प्रकृति का संयोग अन्धे और लगड़े के समान होता है जिससे सृष्टिप्रक्रिया सम्पन्न होती है।
- पुरुष और प्रकृति के संयोग का प्रमुख रूप से दो प्रयोजन है-
  1. प्रकृति का दर्शन 2. पुरुष को कैवल्य की प्राप्ति।

प्रकृति एवं पुरुष के संयोग का प्रयोजन

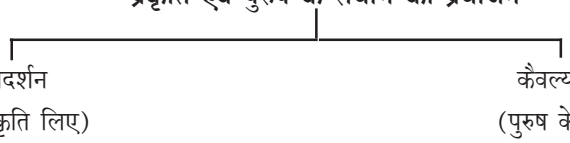

- महत् की उत्पत्ति मूलप्रकृति से होती है।
- अहंकार की उत्पत्ति महत् से होती है।
- सोलह पदार्थों का समूह अर्थात् पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्च कर्मेन्द्रियाँ, पञ्च तन्मात्रा तथा मन की उत्पत्ति अहंकार से होती है।
- पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति पाँच तन्मात्राओं से होती है।
- महत् को बुद्धि, प्रत्यय, महान् एवं उपलब्धि आदि नामों से भी जाना जाता है।
- सत्त्वगुण प्रधान अहंकार से पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, पञ्चकर्मेन्द्रियाँ, तथा मन की उत्पत्ति होती है।
- तमोगुण प्रधान अहंकार से पञ्च तन्मात्राओं की उत्पत्ति होती है।

सांख्य की सृष्टि प्रक्रिया (का0-22)

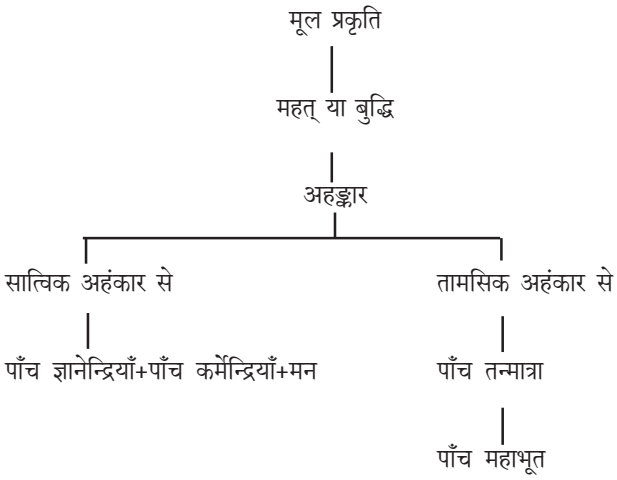

- पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं- श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना, घ्राण।
- पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं- वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ।
- पाँच तन्मात्रा हैं- शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध।
- पाँच महाभूत हैं- आकाश, वायु,तेज, जल, पृथिवी।

पाँच महाभूतों की उत्पत्ति क्रम

1. पाँच तन्मात्रा	2. महाभूत
शब्द	आकाश
शब्द+स्पर्श	वायु
शब्द+स्पर्श+रूप	अग्नि
शब्द +स्पर्श+रूप+रस	जल
शब्द+स्पर्श+रूप+रस+गन्ध	पृथिवी

- बुद्धि का लक्षण है- 'अध्यवसायो बुद्धिः धर्मः' अर्थात् निश्चयात्मक अथवा निश्चय करने वाला तत्त्व बुद्धि है। (का0-23)
- बुद्धि के आठ गुण- धर्म,अधर्म,ज्ञान,अज्ञान,वैराग्य,राग,ऐश्वर्य,अनैश्वर्य।
- बुद्धि के चार सात्त्विक गुण- धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य।
- बुद्धि के चार तामसिक गुण- अधर्म,अज्ञान, राग, अनैश्वर्य।
- व्यक्ति को 'अभ्युदय' एवं निःश्रेयस् की प्राप्ति कराने वाला कारण धर्म है।
- त्रिगुणात्मिका 'प्रकृति' एवं निर्गुण, तेजोरूप 'पुरुष' का विवेक भेदपूर्वक साक्षात्कार ही सांख्यदर्शन की भाषा में ज्ञान कहलाता है।
- आसक्ति का अभाव वैराग्य है।
- अणिमा, लघिमा, गरिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, वशित्व एवं ईशित्व इन आठ सिद्धियों की प्राप्ति ही ऐश्वर्य है।

बुद्धि के धर्म (गुण)

सत्त्व अंश	तामसिक अंश
(धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य)	(अधर्म, अज्ञान, राग, अनैश्वर्य)

- अहङ्कार- ''अभिमानोऽहंकारः''अर्थात् 'मैं' इस प्रकार के अभिमान को अहंकार कहते हैं।
- अहंकार से दो प्रकार के कार्य होते हैं-
  1. ग्यारह इन्द्रियों का समूह
  2. पञ्चतन्मात्राओं का समूह।
- ग्यारह इन्द्रियों का समूह वैकृत नामक सात्त्विक अहंकार से तथा पञ्चतन्मात्राओं का समूह भूतादि नामक तामस अहङ्कार से उत्पन्न होते हैं। (का0-24)

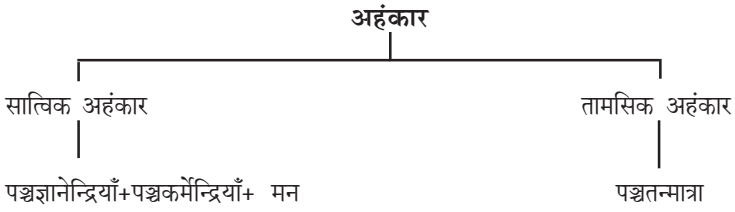

- इन्द्रियाँ दो प्रकार की होती हैं- अन्तः इन्द्रिय, बाह्य इन्द्रिय
- ज्ञान कराने वाली इन्द्रिय को ज्ञानेन्द्रिय कहा जाता है इसे 'बुद्धीन्द्रिय'भी कहते हैं।
- रूप, रस और गन्धादि विषयों को बुद्धिपूर्वक आलोचन, पर्यालोचन आदि करके जो ज्ञान में साधक अथवा करण होती हैं वे बुद्धीन्द्रिय अथवा ज्ञानेन्द्रिय कहलाती हैं।
- ज्ञान के साधक इन्द्रिय को ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्म के साधक इन्द्रिय को कर्मेन्द्रिय कहा जाता है।
- मन को उभयेन्द्रिय कहा गया है क्योंकि यह ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दोनों के साथ समान रूप से कार्य करता है।
- एकादश इन्द्रियों के बीज मन, संकल्प करने वाला तथा समान धर्मभाव के कारण दोनों प्रकार का होता है। **'उभयात्मकमत्र मनः संकल्पकमिन्द्रियं च'** (का0-27)
- पाँच ज्ञानेन्द्रियों का व्यापार शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयों का प्रकाशन मात्र माना जाता है **'रूपादिषु पञ्चानामालोचनमात्रमिष्यते वृत्तिः'** (का0-28)
- पाँच कर्मेन्द्रियों का व्यापार बोलना, ग्रहण करना, चलना, त्यागकरना, और आनन्द का अनुभव कराना माना जाता है **'वचनादानविहरणोत्सर्गानन्दाश्च'** (का0-28)
- नाम, जाति, गुण, क्रिया आदि विशेषताओं का संकल्प-विकल्प करना मन का कार्य है।
- यह वस्तु त्यागने योग्य है अथवा ग्रहण करने योग्य इसका निश्चय बुद्धि करती है।

पाँच ज्ञानेन्द्रियों के कार्य	
ज्ञानेन्द्रिय	**कार्य**
श्रोत्र (कान)	शब्द
त्वक् (त्वचा)	स्पर्श
चक्षु (आँख)	रूप
रसना (जीभ)	रस
घ्राण (नाक)	गन्ध

पाँच कर्मेन्द्रियों के कार्य

कर्मेन्द्रिय	कार्य
वाक् (वाणी)	बोलना (भाषण)
पाणि (हाथ)	लेना (ग्रहण)
पाद (पैर)	चलना (गमनागमन)
पायु (गुदा)	त्याग करना (मलत्याग)
उपस्थ (जननेन्द्रिय)	आनन्द प्रदान करना

पाँच वायु की स्थिति

वायु	**स्थिति** (का0-29)
प्राण	नासिका, हृदय, नाभि, पैर का अँगूठा
अपान	गले की घुंडी, पीठ, पैर, गुदा, जननेन्द्रिय
समान	हृदय, नाभि, शरीर के जोड़
उदान	हृदय, कण्ठ, तालु, सिर- भौहों के बीच
व्यान	सम्पूर्ण शरीर में त्वचा

- करण तेरह प्रकार के हैं 'करणं त्रयोदशविधम्'।
- तेरह प्रकार के करण हैं- एकादश इन्द्रिय, बुद्धि, अहंकार (का0-32)
- करण के कार्य हैं- आहरण, धारण तथा प्रकाश
- वाक् इत्यादि कर्मेन्द्रियाँ अपने-अपने विषय का आहरण या ग्रहण करती हैं।
- बुद्धि, अहंकार और मन अपने प्राण इत्यादि व्यापार के द्वारा देह को धारण करती है।
- ज्ञानेन्द्रियाँ शब्द, स्पर्श इत्यादि को प्रकाशित करती हैं।

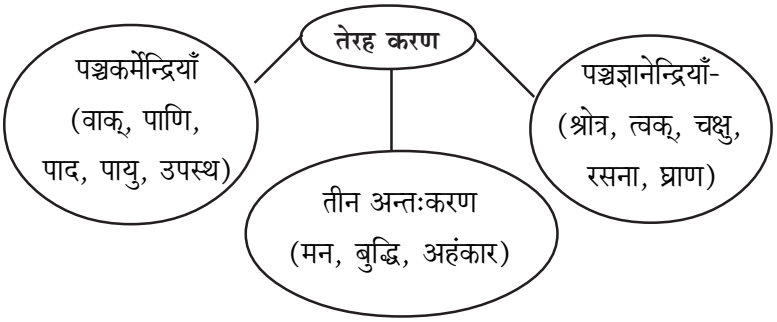

- त्रयोदशकरण को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-
  1. आभ्यन्तरकरण- बुद्धि, अहंकार,मन
  2. बाह्यकरण- पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ।

करण के दो भेद

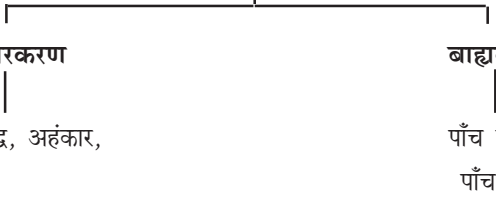

- अन्तःकरण तीन प्रकार के है- **'अन्तःकरणं त्रिविधम्'** (का0-33) बुद्धि, अहंकार, मन।
- अन्तःकरण को प्रस्तुत करने वाले बाह्यकरण दस हैं। पञ्चज्ञानेन्द्रिय+पञ्चकर्मेन्द्रियाँ
- वर्तमान विषयक होते हैं- बाह्य करण
- अन्तःकरण को **आभ्यन्तर करण** भी कहते हैं।
- ज्ञानेन्द्रियाँ बाहर स्थित अपने-अपने विषयों के सम्पर्क में आकर उन्हें प्रकाशित करके उनकी सूचना अन्तः करण को प्रदान करती हैं।
- बाह्यकरण केवल वर्तमानकाल के विषयों में प्रभावी होते हैं इसलिए इसे 'साम्प्रत्कालम्' कहा गया है।
- आभ्यन्तर अर्थात् अन्तःकरण भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों कालों में प्रभावी होते हैं।
- 'स्वालक्षण्यं वृत्तिस्त्रयस्य' में त्रयस्य पद से अभिप्राय मन बुद्धि अहंकार से है।
- अन्तः करण में दो प्रकार की शक्तियों को माना जाता है- ज्ञानशक्ति तथा क्रियाशक्ति।
- बुद्धि, मन, अहंकार ज्ञानशक्ति का तथा प्राणादि क्रियाशक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं।
- तीन प्रकार के अन्तः करण तथा एक प्रकार का बाह्य करण होने से करण के चार भेद भी माने गये हैं।
- प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले पदार्थ के सम्बन्ध में चार प्रकार के करणों की प्रवृत्ति कभी एक साथ और कभी क्रमशः कही गयी हैं।
- परोक्ष पदार्थों के ज्ञान के सम्बन्ध में केवल मन, बुद्धि, अहंकार ये तीन अन्तः करण का व्यापार प्रत्यक्षपूर्वक एक साथ और क्रमपूर्वक होता है।

तीन अन्तः करण के कार्य

अन्तः करण	कार्य
बुद्धि	निश्चय
अहंकार	अभिमान
मन	संकल्प

- दस बाह्यकरणों में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ स्थूल और सूक्ष्म दो विषयों में प्रवृत्त होती हैं।
- कर्मेन्द्रियों में वाक् इन्द्रिय शब्द के विषय में प्रवृत्त होती हैं शेष चारों ही शब्द स्पर्श इत्यादि पाँचों विषयों में प्रवृत्त होती हैं।

- तीनों अन्तः करण प्रधान हैं क्योंकि मन एवं अहंकार के साथ बुद्धि सभी विषयों में व्याप्त होती है।
- बाह्य इन्द्रियाँ द्वार या साधनमात्र हैं, मन तथा अहंकार से युक्त बुद्धि साधनवती या प्रधान है।
- करण पुरुष के सम्पूर्ण प्रयोजन को प्रकाशित करके बुद्धि को समर्पित कर देते हैं।
- सभी ज्ञानेन्द्रियों, मन और अहंकार का लक्ष्य बुद्धि होता है।
- समस्त विषयों के सम्बन्ध में होने वाले पुरुष के भोग को बुद्धि ही सम्पादित करती है।
- प्रकृति एवं पुरुष के सूक्ष्म भेद को प्रकट करती है- बुद्धि। **'प्रधानपुरुषान्तरं सूक्ष्मम्'- बुद्धिः।** (का0-37)
- सांख्य के अनुसार दुःख की हमेशा के लिए निवृत्ति ही मोक्ष अथवा कैवल्य है।
- पञ्चतन्मात्रा अर्थात् शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ये सूक्ष्म विषय हैं।
- पञ्चतन्मात्राओं से पञ्चमहाभूत की उत्पत्ति होती है।
- आकाश आदि पञ्चमहाभूत विशेष अर्थात् स्थूल कहे जाते हैं, ये सुखात्मक, दुःखात्मक और मोहात्मक होते हैं।
- शान्त घोर और मूढ होते हैं-पञ्चमहाभूत
- सूक्ष्म अर्थात् इन्द्रियों द्वारा जिनका प्रत्यक्ष नहीं किया जाता वे अविशेष हैं।
- सूक्ष्मशरीर, माता-पिता से उत्पन्न स्थूलशरीर, पञ्चमहाभूत ये तीन स्थूल विषय होते हैं।
- नित्य होता है- सूक्ष्मशरीर।
- अनित्य होता है- माता-पिता से उत्पन्न स्थूलशरीर।
- सूक्ष्मशरीर की गति सर्वत्र होती है।
- प्रलयकाल में सूक्ष्मशरीर भी अपने कारण में समाहित हो जाता है।
- सूक्ष्मशरीर को लिङ्गशरीर भी कहते हैं।
- सांख्य का **सूक्ष्मशरीर 18 तत्त्वों** से निर्मित होता है। (का0-40) पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्राएँ, महत्, अहंकार, मन ये सूक्ष्मशरीर के 18 अवयव हैं।
- सूक्ष्मशरीर होता है- सृष्टि के आरम्भ में उत्पन्न, सभी जगह गति करने में सक्षम, प्रलयकाल तक स्थायीरूप से रहने वाला, भोगरहित, भावों से युक्त, महत् से लेकर सूक्ष्मतन्मात्रापर्यन्त, 18 तत्त्वों से निर्मित।
- सूक्ष्मशरीर ही संसरण या गमनागमन करता है।
- सूक्ष्मशरीर का आधार **छः कोषों** से निर्मित स्थूलशरीर होता है।
- 18 तत्त्वों से निर्मित सूक्ष्मशरीर केवल तन्मात्ररूप में स्थित रहता है।
- सूक्ष्मशरीर निरूपभोग अर्थात् भोगरहित होता है।
- सूक्ष्मशरीर को लिङ्गशरीर भी कहते हैं- पुरुष की सत्ता का द्योतक होने के कारण।
- लिङ्ग का लक्षण है- 'लिंग्यते अनेन इति लिङ्गम्' अथवा 'लीनं गमयति इति लिङ्गम्'

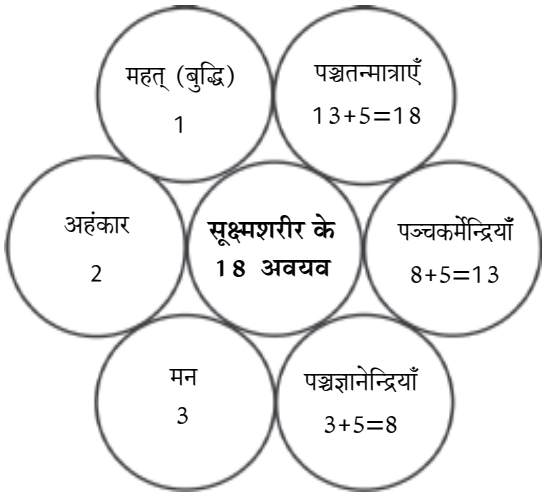

- अविशेष अर्थात् पञ्चतन्मात्राओं के बिना लिङ्गशरीर निराश्रय नहीं रह सकता।
- सूक्ष्मशरीर के द्वारा स्थूलशरीर के माध्यम से जो भी कार्य सम्पन्न किए जाते हैं उन सबका मुख्य प्रयोजन पुरुष के भोग एवं अपवर्ग को सम्पादित करना है।
- प्रकृति अर्थात् स्वभाव से ही सिद्ध सांसिद्धिक तथा 'वैकृतिक' धर्म, अधर्म इत्यादि भाव 'करण' अर्थात् निमित्तरूप बुद्धि के आश्रित रहते हैं। (का0-43)
- कलल अर्थात् जरायु से परिवेष्टित रजोमिश्रितवीर्य इत्यादि भाव कार्य अर्थात् नैमित्तिक शरीर के आश्रित रहते हैं।
- रजस् और वीर्य के मिश्रण को **'कलल'** कहा जाता है।
- धर्म से ऊर्ध्व लोक में गति होती है **'धर्मेण गमनमूर्ध्वम्'** (का0-44)
- अधर्म से अधोलोक में गति होती हैं- **'गमनमधस्ताद् भवत्यधर्मेण'** (का0-44)
- सांख्य में ज्ञान से मोक्ष होता है **'ज्ञानेन चापवर्गः'** (का0-44)
- अज्ञान से बन्धन की प्राप्ति होती है **'विपर्ययादिष्यते बन्धः'** (का0-44)
- धर्म से अभिप्राय यम, नियम आदि अष्टाङ्गयोग, अभ्युदय एवं निःश्रेयस् के साधक यज्ञ, दान, आदि अनुष्ठान सभी श्रेष्ठकर्मों से है।
- लोक हैं- ऊर्ध्वलोक, अधोलोक
- ऊर्ध्वलोकों की संख्या सात है- भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यलोक
- अधोलोक की संख्या भी सात है- अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल, पाताल।
- विवेकख्याति सम्भव है- सांख्यशास्त्र द्वारा।

भावों के फल

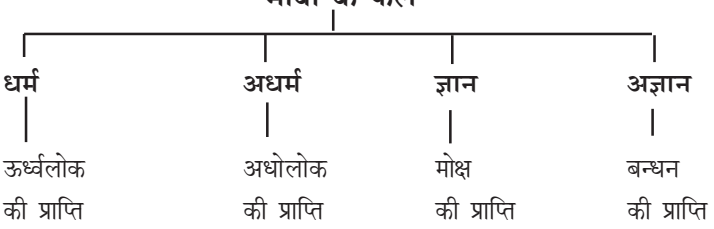

- वैराग्य से प्रकृतिलय होता है **'वैराग्यात् प्रकृतिलयः'** (का0-45)
- रजोमय राग से संसरण होता है **'संसारो भवति राजसाद्रागात्'** (का0-45)
- ऐश्वर्य से इच्छा की सफलता होती है **'ऐश्वर्यादविघातः'** (का0-45)
- ऐश्वर्य के अभाव से इच्छा की सफलता का हनन होता है **'विपर्ययात् तद्विपर्यासः'** (का0-45)

बुद्धि में स्थित भावों के कार्य

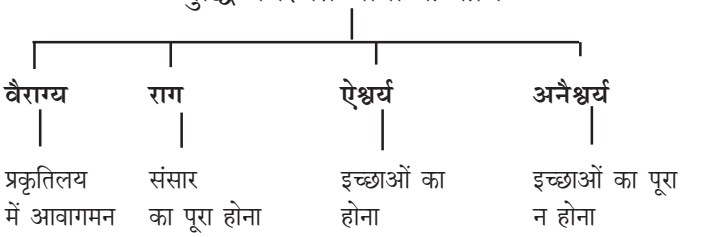

सृष्टि के भेद

- सांख्य के अनुसार सृष्टि दो प्रकार की होती है- भौतिक एवं बौद्धिक।
- बुद्धि के चार प्रमुख परिणाम हैं- विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि, सिद्धि। इन्हें प्रत्ययसर्ग या **बुद्धिसर्ग** कहते हैं।
- प्रत्ययसर्ग के कुल **पचास भेद** हैं। (का0-46-47)
- विपर्यय के **पाँच भेद**- तम, मोह, महामोह, तामिस्र, अन्धतामिस्र।
- अशक्ति की संख्या **अट्ठाइस** है; जिसमें सत्रह प्रकार के बुद्धि के दोष तथा एकादश इन्द्रियों के वध। (का0-28)
- वाधिर्य, कुष्ठता, अन्धत्वी, जडता, अजिघ्रता,मूकता, कैवल्य, पंगुत्व, कौण्ड्य, उदावर्त, मन्दता, असुवर्णा, अनिला, मनोज्ञा, अदृष्टि, अपरा, सुपरा, असुनेत्रा, वसुनाडिका, अनुत्तमाम्भसिका, अप्रतार, असुतार, अतारतार, असदामुदित, अरम्यक्, अप्रमोद, अमुदित, आमोदमान- ये 28 अशक्तियाँ हैं।
- तुष्टि के नौ भेद- 1. प्रकृति, 2. उपादान, 3. काल, 4. भाग, 5. पार, 6. सुपार, 7. पारापार, 8. अनुत्तमाम्भस्, 9. उत्तमाम्भस्। (का0-47)

- आठ प्रकार की सिद्धियाँ-1-3त्रिदुःख विनाश, 4.अध्ययन,5.ऊह, 6.शब्द, 7.सुहृत्प्राप्ति, 8.दान।
- बुद्धि के उपघातों के साथ ग्यारह इन्द्रियों की विकलता अशक्ति कहलाती है।
- नौ तुष्टि और सिद्धियों के विपर्ययभाव से बुद्धि के सत्रह उपघात होते हैं।
- विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि अंकुशरूप में सिद्धि की बाधक होती हैं।
- पुरुष का भोग-अपवर्ग रूप प्रयोजन ही पुरुषार्थ है।
- बौद्धिक परिणाम के बिना तन्मात्र परिणाम सम्भव नहीं है।
- तन्मात्रपरिणाम के बिना बौद्धिक परिणाम भी सम्भव नहीं है।
- देवसृष्टि के आठ प्रकार होते हैं - 1. ब्राह्म, 2. प्राजापत्य, 3. ऐन्द्र, 4. पैत्र, 5. गान्धर्व, 6. यक्ष, 7. राक्षस, 8. पैशाच
- तिर्यक् सृष्टि के पाँच भेद होते हैं-
  1. पशु, 2. पक्षी,3. मृग 4. सरीसृप, 5. स्थावर।
- मनुष्यसृष्टि एक प्रकार की होती है।

भौतिक सृष्टि

देवसृष्टि	तिर्यक् सृष्टि	मनुष्यसृष्टि
(8प्रकार)	(5 प्रकार)	(1 प्रकार)

इसप्रकार **भौतिक सृष्टि चौदह प्रकार** की होती है।

- ब्रह्म से लेकर तृणपर्यन्त भौतिक सृष्टि में ऊपर के लोक में सत्त्वगुण की प्रधानता, अधोलोक अर्थात् नीचे के लोक में तमोगुण की प्रधानता मध्यलोक में रजोगुण की प्रधानता है।

लोक	गुण	सृष्टि
ऊर्ध्व	सत्त्वगुण	देवसृष्टि
अधः	तमोगुण	तिर्यक् सृष्टि
मध्य	रजोगुण	मानुषी सृष्टि

- चेतन पुरुष शरीर के निवृत्त होने तक जरा मरण से उत्पन्न दुःख भोगता है।
  'जरामरणकृतं दुःखं प्राप्नोति चेतनः पुरुषः' (का0-55)
- प्रकृति द्वारा प्रत्येक पुरुष के मोक्ष के लिये किया गया कार्य, महत् आदि से लेकर आकाश आदि महाभूतों की यह सृष्टि अपने लिए की गई सी प्रतीत होते हुए भी पुरुष के लिए ही है।
  'प्रतिपुरुषविमोक्षार्थं स्वार्थं इव परार्थ आरम्भः' (का0-56)

- पुरुष के मोक्ष के लिए अचेतन प्रकृति स्वतः प्रवृत्त होती है इसके लिए सांख्य गाय एवं बछड़े का उदाहरण देता है।
- जैसे बछड़े के पोषण के लिए अचेतन दूध माता के स्तनों में प्रवृत होता है उसीप्रकार पुरुष को मोक्ष दिलाने के लिए अचेतन मूलप्रकृति की प्रवृत्ति होती है **'पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य'** (का0-57)
- जिसप्रकार संसार में स्वेच्छा की पूर्ति के लिए लोग कार्यों में प्रवृत्त होते हैं ठीक उसीप्रकार प्रकृति भी पुरुष के लिए प्रवृत्त होती है- **'पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्तते तद्वदव्यक्तम्'** (का0-58)
- जैसे नृत्यांगना नाट्यशाला में स्थित दर्शकों को नृत्य दिखाकर नृत्य से निवृत्त हो जाती है- **रङ्गस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी यथा पुरुषस्य नृत्यात् तथाऽऽत्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः।।** (का0-59)
- गुणवती एवं उपकारिणी प्रकृति निर्गुण होते हुए पुरुष के भोग एवं अपवर्ग रूप प्रयोजन को अनेक प्रकार के उपायों द्वारा बिना किसी स्वार्थभाव से सम्पादित करती है।
- प्रकृति से अधिक लज्जालु और कोई नहीं है, 'जो पुरुष ने मुझे देख लिया', ऐसा ज्ञान हो जाने पर पुनः पुरुष की दृष्टि में नहीं आती-

  प्रकृतेः सुकुमारतरं न किञ्चिदस्तीति मे मतिर्भवति।
  या दृष्टाऽस्मीति पुनर्न दर्शनमुपैति पुरुषस्य।। (का0-61)
- वस्तुतः न तो किसी पुरुष का बन्धन होता है और न ही मोक्ष और न संसरण 'तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नापि संसरति कश्चित्' (का0-62)
- अनेक आश्रयों वाली प्रकृति ही संसरण करती है उसी का बन्धन एवं मोक्ष होता है- 'संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः' (का0-62)
- प्रकृति स्वयं को अपने सात रूपों धर्म, अधर्म, अज्ञान, वैराग्य, राग, ऐश्वर्य, अनैश्वर्य के द्वारा अपने को बाँधती है- **'रूपैः सप्तभिरेव तु बध्नात्यात्मानमात्मना प्रकृतिः'**(का0-63)
- पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए प्रकृति एक रूप ज्ञान द्वारा स्वयं को मुक्त करती है- **'पुरुषार्थं प्रति विमोचयत्येकरूपेण'** (का0-63)
- बन्धन एवं मोक्ष पुरुष का नहीं अपितु सूक्ष्मशरीर के रूप में प्रकृति का होता है।
- प्रकृति अपने ज्ञान नामक भाव से पुरुष के लिए स्वयं को निवृत्त करती है।

  प्रकृति
  - **बन्धन** (सात रूपों द्वारा यथा- धर्म,अधर्म,अज्ञान, वैराग्य, राग, ऐश्वर्य, अनैश्वर्य)
  - **मोक्ष** (एक रूप द्वारा यथा ज्ञान)
- पच्चीस तत्त्वों के लगातार चिन्तनपूर्वक अभ्यास से तीन प्रकार की अनुभूति होती है न अस्मि, न मे, न अहम् 'तत्त्वाभ्यासान्नास्मि न मे नाहमित्यपरिशेषम्' (का0-64) अर्थात् न मैं क्रियावान् हूँ, न भोक्तृत्व हूँ, न कर्त्ता हूँ।

- निष्क्रिय पुरुष विवेकज्ञान रूप सामर्थ्य से धर्म अधर्म आदि सात रूपों से रहित, तथा अपने सम्बन्ध से भोग और विवेकज्ञान इत्यादि परिणाम न उत्पन्न करने वाली प्रकृति को द्रष्टा के समान देखता है।
- भोग एवं विवेक ज्ञान सम्पन्न होते हैं- प्रकृति के द्वारा।
- तत्त्वों के निरन्तर अभ्यास से उत्पन्न विवेकज्ञान होने पर प्रकृति उस ज्ञान के प्रति अपने भोग एवं अपवर्ग दोनों प्रकार के प्रसव बन्द कर देती है।
- चेतन पुरुष के द्वारा प्रकृति को मैने देख लिया ऐसा विचार कर उदासीन हो जाता है।
- प्रकृति के द्वारा उसने (पुरुष) मुझे देख लिया यह सोचकर व्यापार शून्य हो जाता है।
- इसप्रकार का संयोग होने पर भी सृष्टि प्रकृति व्यापार का कोई प्रयोजन नहीं रह जाता।
- सृष्टि का प्रयोजन है पुरुष के भोगापवर्ग की सिद्धि जो प्रकृति द्वारा सम्पन्न की जाती है।
- मुख्य प्रयोजन अपवर्ग तथा गौण प्रयोजन भोग है।
- पुरुष को विवेकज्ञान होना ही अपवर्ग है।
- आत्मज्ञान की प्राप्ति से, धर्म अधर्म आदि सृष्टि के कारण में न रहने पर पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण कुम्हार के चाक के घूमने के समान शरीर धारण किये रहता है- **'तिष्ठति संस्कारवशाच्चक्रभ्रमिवद् धृतशरीरः'** (का0-67)
- शरीर पात होने पर, भोग एवं अपवर्ग दोनों पुरुषार्थों के पूर्व से सिद्ध रहने के कारण प्रकृति के निवृत्त हो जाने पर पुरुष ऐकान्तिक और आत्यन्तिक मुक्ति प्राप्त कर लेता है।
- ऐकान्तिक और आत्यन्तिक दुःख की निवृत्ति ही कैवल्य है।

❑❑